Chapter पाँच

दुर्वासा मुनि को जीवन-दान

इस अध्याय में महाराज अम्बरीष सुदर्शन चक्र की स्तुति करते हैं और हम देखते हैं कि किस तरह सुदर्शन चक्र दुर्वासा मुनि पर कृपालु हो उठा।

भगवान् विष्णु के आदेश से दुर्वासा मुनि अविलम्ब महाराज अम्बरीष के पास जाकर उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। स्वभाव से अत्यन्त विनम्र होने के कारण महाराज अम्बरीष लज्जित हुए क्योंकि दुर्वासा मुनि उनके चरणों पर गिर पड़े थे, अतएव दुर्वासा को बचाने के लिए उन्होंने सुदर्शन चक्र की स्तुति करनी प्रारम्भ की। यह सुदर्शन चक्र क्या है ? यह भगवान् की दृष्टि है जिससे वे सारे भौतिक जगत की सृष्टि करते हैं। *स ऐक्षत स असृजत।* यह वेदवाक्य है। यह सुदर्शन चक्र सृष्टि का उत्स है और भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। इसमें एक हजार अरे हैं। यह अन्य सारे हथियारों के पराक्रम को ध्वंस करने वाला, अंधकार का नाशक तथा भक्ति-बल को प्रकट करने वाला है। यह धर्म-स्थापना का साधन है और अधर्मों का विनाशक है। इसकी कृपा के बिना ब्रह्माण्ड स्थित नहीं रह सकता अतएव भगवान् इस चक्र को उपयोग में लाते हैं। जब महाराज अम्बरीष ने स्तुति की कि सुदर्शन चक्र कृपालु हो तो सुदर्शन चक्र शांत होकर दुर्वासा मुनि को मारने से विरत हुआ। इस तरह दुर्वासा को सुदर्शन चक्र की कृपा प्राप्त हो गई। फलस्वरूप दुर्वासा मुनि ने वैष्णव को सामान्य व्यक्ति समझने के अपने घृणित विचार को त्याग दिया (*वैष्णवे जातिबुद्धि*)। महाराज अम्बरीष क्षत्रिय जाति के थे अतएव दुर्वासा मुनि उन्हें ब्राह्मणों से निम्न मानते थे और इसीलिए उन पर ब्राह्मण शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे। इस घटना से हर एक को यह सीख लेना चाहिए कि वैष्णवों की उपेक्षा का गर्हित विचार किस तरह त्याग देना चाहिए। इस घटना के बाद महाराज अम्बरीष ने दुर्वासा मुनि को अच्छा भोजन खिलाया और राजा ने भी, जो उस स्थान पर एक वर्ष से बिना कुछ खाये खड़े थे, प्रसाद ग्रहण किया। कालान्तर में महाराज अम्बरीष ने अपनी सम्पत्ति अपने पुत्रों में बाँट दी और वे भक्तिपूर्वक ध्यान करने के लिए मानस सरोवर के तट पर चले गये।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ।
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह से; भगवता आदिष्टः—भगवान् द्वारा आदेशित होकर; दुर्वासाः—दुर्वासा; चक्र-तापितः—सुदर्शन चक्र के द्वारा अत्यन्त सताया जाकर; अम्बरीषम्—महाराज अम्बरीष के; उपावृत्य—पास पहुँचकर; तत्-पादौ—उसके चरणकमलों को; दुःखितः—अत्यन्त दुखी होकर; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् विष्णु ने दुर्वासा मुनि को इस प्रकार सलाह दी तो सुदर्शन चक्र से अत्यधिक उत्पीड़ित मुनि तुरन्त ही महाराज अम्बरीष के पास पहुँचे। उन्होंने अत्यन्त दुखित होने के कारण राजा के चरणकमलों पर गिरकर उन्हें पकड़ लिया।

तस्य सोद्यममावीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ।
अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तस्य—दुर्वासा का; सः—महाराज अम्बरीष ने; उद्यमम्—प्रयत्न; आवीक्ष्य—देखकर; पाद-स्पर्श-विलज्जितः—दुर्वासा द्वारा अपने चरणकमल छुए जाने से लज्जित; अस्तावीत्—स्तुति की; तत्—उस; हरेः अस्त्रम्—भगवान् के अस्त्र की; कृपया—कृपापूर्वक; पीडितः—दुखित; भृशम्—अत्यधिक।

जब दुर्वासा मुनि ने महाराज अम्बरीष के पाँव छुए तो वे अत्यन्त लज्जित हो उठे और जब उन्होंने यह देखा कि दुर्वासा उनकी स्तुति करने का प्रयास कर रहे हैं तो वे दयावश और भी अधिक संतप्त हो उठे। अतः उन्होंने तुरन्त ही भगवान् के महान् अस्त्र की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

अम्बरीष उवाच
त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अम्बरीषः उवाच—महाराज अम्बरीष ने कहा; त्वम्—तुम (हो); अग्निः—अग्नि; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; सूर्यः—सूर्य; त्वम्—तुम (हो); सोमः—चन्द्रमा; ज्योतिषाम्—सारे नक्षत्रों के; पतिः—स्वामी; त्वम्—तुम (हो); आपः—जल; त्वम्—तुम (हो); क्षितिः—पृथ्वी; व्योम—आकाश; वायुः—वायु; मात्र—इन्द्रियों के विषय, तन्मात्रा; इन्द्रियाणि—तथा इन्द्रियाँ; च—भी।

महाराज अम्बरीष ने कहा : हे सुदर्शन चक्र, तुम अग्नि हो, तुम परम शक्तिमान सूर्य हो तथा तुम सारे नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हो। तुम जल, पृथ्वी तथा आकाश हो, तुम पाँचों इन्द्रियविषय (ध्वनि, स्पर्श, रूप, स्वाद तथा गंध) हो और तुम्हीं इन्द्रियाँ भी हो।

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४॥

शब्दार्थ

सुदर्शन—हे भगवान् की मूल ज्योति; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; सहस्र-अर—हे हजार अरों वाले; अच्युत-प्रिय—भगवान् अच्युत के अत्यन्त प्रिय; सर्व-अस्त्र-घातिन्—हे सभी अस्त्रों को नष्ट करने वाले; विप्राय—इस ब्राह्मण को; स्वस्ति—अत्यन्त शुभ; भूयाः—हो जाओ; इडस्पते—हे संसार के स्वामी।

हे भगवान् अच्युत के परम प्रिय, तुम एक हजार अरों वाले हो। हे संसार के स्वामी, समस्त अस्त्रों के विनाशकर्ता, भगवान् की आदि दृष्टि, मैं तुमको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपा करके इस ब्राह्मण को शरण दो तथा इसका कल्याण करो।

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; धर्मः—धर्म; त्वम्—तुम; ऋतम्—प्रेरणाप्रद कथन; सत्यम्—चरम सत्य; त्वम्—तुम; यज्ञः—यज्ञ; अखिल—सारे विश्व का; यज्ञ-भुक्—यज्ञ से उत्पन्न फलों का भोक्ता; त्वम्—तुम; लोक-पालः—विभिन्न लोकों के पालनकर्ता; सर्व-आत्मा—सर्वव्यापी; त्वम्—तुम; तेजः—तेज; पौरुषम्—भगवान् का; परम्—दिव्य।

हे सुदर्शन चक्र, तुम धर्म हो, तुम सत्य हो, तुम प्रेरणाप्रद कथन हो, तुम यज्ञ हो तथा तुम्हीं यज्ञ-फल के भोक्ता हो। तुम अखिल ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता हो और तुम्हीं भगवान् के हाथों में परम दिव्य तेज हो। तुम भगवान् की मूल दृष्टि हो; अतएव तुम सुदर्शन कहलाते हो। सभी वस्तुएँ तुम्हारे कार्यकलापों से उत्पन्न की हुई हैं, अतएव तुम सर्वव्यापी हो।

तात्पर्य : *सुदर्शन* शब्द का अर्थ है "शुभ दृष्टि।" वैदिक आदेशों से पता चलता है कि यह संसार भगवान् की चितवन से उत्पन्न हुआ (*स ऐक्षत स असृजत*)। भगवान् ने महत्-तत्त्व पर दृष्टि डाली और जब वह विक्षुब्ध हुआ तो सारी वस्तुएँ उत्पन्न हो गईं। कभी-कभी पाश्चात्य दार्शनिक सोचते हैं कि सृष्टि का मूल कारण पिंड का विस्फोट था। यदि कोई इस पिंड को सम्पूर्ण भौतिक शक्ति या महत्-तत्त्व माने तो वह समझ सकता है कि यह पिंड भगवान् की चितवन से विक्षुब्ध हुआ और इस तरह भगवान् की चितवन ही इस सृष्टि का मूल कारण है।

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।

त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे
मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

नमः—आपको सादर नमस्कार है; सु-नाभ—हे शुभ नाभि वाले; अखिल-धर्म-सेतवे—जिसके अरे समस्त ब्रह्माण्ड के सेतु समान हैं; हि—निस्सन्देह; अधर्म-शील—अधार्मिक; असुर—असुरों के लिए; धूम-केतवे—जो अग्नि या अशुभ पुच्छल तारे के समान हैं, उनको; त्रैलोक्य—तीनों संसारों के; गोपाय—पालक को; विशुद्ध—दिव्य; वर्चसे—जिसका तेज; मनः-जवाय—मन के समान गति वाला; अद्भुत—विचित्र; कर्मणे—इतना सक्रिय; गृणे—मैं बोलता हूँ।.

हे सुदर्शन, तुम्हारी नाभि अत्यन्त शुभ है, अतएव तुम धर्म की रक्षा करने वाले हो। तुम अधार्मिक असुरों के लिए अशुभ पुच्छल तारे के समान हो। निस्सन्देह, तुम्हीं तीनों लोकों के पालक हो। तुम दिव्य तेज से पूर्ण हो, तुम मन के समान तीव्रगामी हो और अद्भुत कर्म करने वाले हो। मैं केवल नमः शब्द कहकर तुम्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् का चक्र सुदर्शन कहलाता है क्योंकि यह उच्च तथा निम्न अपराधियों या असुरों में भेदभाव नहीं करता। दुर्वासा मुनि निश्चय ही शक्तिशाली ब्राह्मण थे, किन्तु उनके कार्यकलाप शुद्ध भक्त अम्बरीष महाराज के प्रति असुरों जैसे थे। शास्त्रों का वचन है—*धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्*—धर्म शब्द का अर्थ है भगवान् द्वारा दिये गये आदेश या नियम। *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—असली धर्म तो भगवान् की शरण ग्रहण करना है। अतएव असली धर्म का अर्थ है भगवान् की भक्ति। इसीलिए सुदर्शन चक्र को यहाँ *धर्मसेतवे* अर्थात् धर्म का रक्षक कहा गया है। महाराज अम्बरीष सचमुच धार्मिक व्यक्ति थे अतएव उनकी रक्षा करने के लिए सुदर्शन चक्र दुर्वासा मुनि जैसे कठोर ब्राह्मण को भी दण्ड देने को उद्यत था क्योंकि उन्होंने असुर जैसा कर्म किया था। ब्राह्मणों के रूप में भी असुर मिलते हैं। अतएव सुदर्शन चक्र ब्राह्मण असुर तथा शूद्र असुर में भेद नहीं बरतता। जो कोई भी भगवान् तथा उनके भक्तों के विरुद्ध होता है वह असुर कहलाता है। शास्त्रों में ऐसे अनेक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय असुरों की तरह कर्म करते पाये गए हैं अतएव उनका वर्णन असुरों की भाँति हुआ है। शास्त्रों के निर्णय के अनुसार किसी की पहचान उसके लक्षणों के अनुसार ही की जाती है। यदि कोई ब्राह्मण पिता से उत्पन्न है, किन्तु उसके लक्षण असुरों जैसे हैं तो वह असुर माना जाता है। सुदर्शन चक्र सदैव असुरों का ध्वंस करने के लिए है अतएव उसे *अधर्मशीलासुर धूमकेतवे* कहा गया है। जो भक्त नहीं हैं वे अधर्मशील कहलाते हैं। सुदर्शन चक्र ऐसे सारे असुरों के लिए अशुभ पुच्छल तारे की भाँति है।

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं
तमः प्रकाशश्च दृशो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते
त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्वत्-तेजसा—तुम्हारे तेज से; धर्म-मयेन—धार्मिक नियमों से पूर्ण; संहृतम्—दूर हो जाता है; तमः—अंधकार; प्रकाशः च—प्रकाश भी; दृशः—सभी दिशाओं का; महा-आत्मनाम्—महान् विद्वान पुरुषों का; दुरत्ययः—दुर्लंघ्य; ते—तुम्हारी; महिमा—महिमा; गिराम् पते—हे वाणी के स्वामी; त्वत्-रूपम्—तुम्हारा स्वरूप; एतत्—यह; सत्-असत्—प्रकट तथा अप्रकट; पर-अवरम्—उच्च तथा निम्न।

हे वाणी के स्वामी, धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्ण तुम्हारे तेज से संसार का अंधकार दूर हो जाता है और विद्वान पुरुषों या महात्माओं का ज्ञान प्रकट होता है। निस्सन्देह, कोई तुम्हारे तेज का पार नहीं पा सकता क्योंकि सारी वस्तुएँ, चाहे प्रकट अथवा अप्रकट हों, स्थूल अथवा सूक्ष्म हों, उच्च अथवा निम्न हों, आपके तेज के द्वारा प्रकट होने वाले आपके विभिन्न रूप ही हैं।

तात्पर्य : प्रकाश के बिना इस भौतिक संसार में कुछ भी नहीं देखा जा सकता। इस संसार का प्रकाश उस सुदर्शन के तेज से उद्भूत होता है जो भगवान् की मूल दृष्टि है। सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के प्रकाश-तत्त्व सुदर्शन से उद्भूत होते हैं। इसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश भी सुदर्शन से ही आता है क्योंकि सुदर्शन का प्रकाश ऊँच तथा नीच में अन्तर बतला सकता है। सामान्यतया लोग दुर्वासा मुनि जैसे शक्तिशाली योगी को अद्भुत रूप से उच्च मानते हैं, किन्तु यदि ऐसे पुरुष का पीछा सुदर्शन चक्र करे तो हम उसकी असली पहचान पा सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि वह भक्तों के साथ अपने व्यवहार में कितना निम्न है।

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृश्चन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८॥

शब्दार्थ

यदा—जब; विसृष्टः—भेजा; त्वम्—तुमने; अनञ्जनेन—दिव्य भगवान् द्वारा; वै—निस्सन्देह; बलम्—सैनिकों के; प्रविष्टः—बीच घुसकर; अजित—हे अजित; दैत्य-दानवम्—दैत्यों तथा दानवों का; बाहु—भुजाएँ; उदर—पेट; ऊरु—जाँघें; अङ्घ्रि—पाँव; शिरः-धराणि—गर्दन; वृश्चन्—पृथक् करने वाले; अजस्रम्—निरन्तर; प्रधने—युद्धभूमि में; विराजसे—रहते हो।

हे अजित, जब तुम भगवान् द्वारा दैत्यों तथा दानवों के सैनिकों के बीच घुसने के लिए भेजे जाते

हो तो तुम युद्धस्थल पर डटे रहते हो और निरन्तर उनके हाथों, पेटों, जाँघों, पाँवों तथा शिरों को विलग करते रहते हो।

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह व्यक्ति; त्वम्—तुम; जगत्-त्राण—हे सम्पूर्ण जगत के रक्षक; खल-प्रहाणये—ईर्ष्यालु शत्रुओं को मारने में; निरूपितः—लगे हुए; सर्व-सहः—सर्वशक्तिमान; गदा-भृता—भगवान् द्वारा; विप्रस्य—इस ब्राह्मण का; च—भी; अस्मत्—हमारा; कुल-दैव-हेतवे—वंश के सौभाग्य हेतु; विधेहि—कृपा करके करें; भद्रम्—शुभ, कल्याण; तत्—वह; अनुग्रहः—कृपा; हि—निस्सन्देह; नः—हमारा।

हे विश्व के रक्षक, तुमको ईर्ष्यालु शत्रुओं को मारने के लिए भगवान् अपने सर्वशक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। हमारे सम्पूर्ण वंश के लाभ हेतु कृपया इस गरीब ब्राह्मण पर दया कीजिये। निश्चय ही, यह हम सब पर कृपा होगी।

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यदि—अगर; अस्ति—है; दत्तम्—दान; इष्टम्—इष्टदेव की पूजा करना; वा—अथवा; स्व-धर्मः—वृत्तिपरक कार्य; वा—अथवा; सु-अनुष्ठितः—भलीभाँति सम्पन्न किया गया; कुलम्—वंश; नः—हमारा; विप्र-दैवम्—ब्राह्मणों द्वारा कृपा प्राप्त; चेत्—यदि ऐसा; द्विजः—यह ब्राह्मण; भवतु—हो सके; विज्वरः—जलन से (सुदर्शन चक्र से) मुक्त।

यदि हमारे परिवार ने सुपात्रों को दान दिया है, यदि हमने कर्मकांड तथा यज्ञ सम्पन्न किये हैं, यदि हमने अपने-अपने वृत्तिपरक कर्तव्यों को ठीक से पूरा किया है और यदि हम विद्वान ब्राह्मणों द्वारा मार्गदर्शन पाते रहे हैं तो मैं चाहूँगा कि उनके बदले में यह ब्राह्मण सुदर्शन चक्र के द्वारा उत्पन्न जलन से मुक्त कर दिया जाय।

यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; नः—हम पर; भगवान्—भगवान्; प्रीतः—प्रसन्न है; एकः—एकमात्र; सर्व-गुण-आश्रयः—समस्त दिव्य गुणों का आगार; सर्व-भूत-आत्म-भावेन—समस्त जीवों के प्रति दया भाव होने से; द्विजः—यह ब्राह्मण; भवतु—हो जाये; विज्वरः—सारे ताप से मुक्त।

यदि समस्त दिव्य गुणों के आगार तथा समस्त जीवों के प्राण तथा आत्मा अद्वितीय परमेश्वर हम पर प्रसन्न हैं तो हम चाहेंगे कि यह ब्राह्मण दुर्वासा मुनि जलन की पीड़ा से मुक्त हो जाय।

श्रीशुक उवाच
इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; संस्तुवतः—प्रार्थना किये जाने पर; राज्ञः—राजा द्वारा; विष्णु-चक्रम्—भगवान् विष्णु के चक्र को; सुदर्शनम्—सुदर्शन नामक; अशाम्यत्—शान्त हो गया; सर्वतः—सभी तरह से; विप्रम्—ब्राह्मण को; प्रदहत्—जलाता हुआ; राज—राजा की; याच्ञया—याचना द्वारा।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब राजा ने सुदर्शन चक्र एवं भगवान् विष्णु की स्तुति की तो स्तुतियों के कारण सुदर्शन चक्र शान्त हुआ और उसने दुर्वासा मुनि नामक ब्राह्मण को जलाना बन्द कर दिया।

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ।
प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, दुर्वासा मुनि; मुक्तः—छूटकर; अस्त्र-अग्नि-तापेन—सुदर्शन चक्र की अग्नि के ताप से; दुर्वासाः—योगी दुर्वासा ने; स्वस्तिमान्—पूर्णतया संतुष्ट, ताप से मुक्त; ततः—तब; प्रशशंस—प्रशंसा की; तम्—उस; उर्वी-ईशम्—राजा को; युञ्जानः—करते हुए; परम-आशिषः—सर्वोच्च आशीर्वाद।

सुदर्शन चक्र की अग्नि से मुक्त किये जाने पर परम शक्तिशाली योगी दुर्वासा मुनि प्रसन्न हुए। तब उन्होंने महाराज अम्बरीष के गुणों की प्रशंसा की और उन्हें उत्तमोत्तम आशीष दिये।

दुर्वासा उवाच
अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

दुर्वासाः उवाच—दुर्वासा मुनि ने कहा; अहो—ओह; अनन्त-दासानाम्—भगवान् के सेवकों की; महत्त्वम्—महानता; दृष्टम्—देखी गई; अद्य—आज; मे—मेरे द्वारा; कृत-आगसः अपि—अपराधी होते हुए भी; यत्—फिर भी; राजन्—हे राजा; मङ्गलानि—सौभाग्य के लिए; समीहसे—तुम याचना कर रहे हो।

दुर्वासा मुनि ने कहा : हे राजा, आज मैंने भगवान् के भक्तों की महानता का अनुभव किया क्योंकि मेरे अपराधी होने पर भी आपने मेरे सौभाग्य के लिए प्रार्थना की है।

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ।
यैः सङ्गृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दुष्करः—कर पाना कठिन; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; साधूनाम्—भक्तों का; दुस्त्यजः—छोड़ पाना असम्भव; वा—अथवा; महा-आत्मनाम्—महापुरुषों का; यैः—जिन पुरुषों के द्वारा; सङ्गृहीतः—(भक्ति द्वारा) प्राप्त किया गया; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—शुद्ध भक्तों का; ऋषभः—नायक; हरिः—भगवान्।

जिन लोगों ने शुद्ध भक्तों के स्वामी भगवान् को प्राप्त कर लिया है उनके लिए क्या करना असम्भव है और क्या त्यागना असम्भव है?

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यत्-नाम—भगवान् का पवित्र नाम; श्रुति-मात्रेण—सुनने से ही; पुमान्—मनुष्य; भवति—हो जाता है; निर्मलः—शुद्ध; तस्य—उसका; तीर्थ-पदः—भगवान् जिनके चरण पवित्र स्थल हैं; किम् वा—क्या; दासानाम्—दासों के द्वारा; अवशिष्यते—करने को बचता है।

भगवान् के दासों के लिए क्या असम्भव है? भगवान् का पवित्र नाम सुनने मात्र से ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना ।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा; अनुगृहीतः—अत्यधिक दया प्राप्त; अहम्—मैं; त्वया—आपके द्वारा; अति-करुण-आत्मना—आपके अत्यन्त करुणामय होने से; मत्-अघम्—मेरे अपराध; पृष्ठतः—पीठ की ओर; कृत्वा—करके; प्राणाः—प्राण; यत्—जो; मे—मेरा; अभिरक्षिताः—बचाया।

हे राजन्, आपने मेरे अपराधों को अनदेखा करके मेरा जीवन बचाया है। इस तरह मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ क्योंकि आप इतने दयावान हैं।

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ।

चरणावुपसङ्गृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

राजा—राजा; तम्—उसको, दुर्वासा को; अकृत-आहार:—भोजन करने से विरत; प्रत्यागमन—वापसी; काङ्क्षया—चाहते हुए; चरणौ—पाँवों तक; उपसङ्गृह्य—पहुँच कर; प्रसाद्य—सभी प्रकार से तुष्ट करके; समभोजयत्—भोजन कराया।

राजा ने दुर्वासा मुनि की वापसी की आशा से स्वयं भोजन नहीं किया था। अतएव जब मुनि लौटे तो राजा उनके चरण-कमलों पर गिर पड़ा और उन्हें सभी प्रकार से तुष्ट करके भरपेट भोजन कराया।

सोऽशित्वादृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स:—वह (दुर्वासा); अशित्वा—भरपेट भोजन करके; आदृतम्—बड़े सत्कार के साथ; आनीतम्—स्वागत किया; आतिथ्यम्—तरह-तरह के व्यंजन प्रदान किये; सार्व-कामिकम्—सभी प्रकार से स्वादों को पूरा करने वाले; तृप्त-आत्मा—पूरी तरह से तुष्ट; नृपतिम्—राजा से; प्राह—कहा; भुज्यताम्—हे राजा, तुम भी खाओ; इति—इस प्रकार; स-आदरम्—आदरपूर्वक।

इस प्रकार राजा ने बड़े आदर के साथ दुर्वासा मुनि का स्वागत किया। वे नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन खाकर इतने सन्तुष्ट हुए कि उन्होंने बड़े ही स्नेह से राजा से भी खाने के लिए प्रार्थना की ''कृपया भोजन ग्रहण करें।''

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रीत:—अत्यधिक सन्तुष्ट; अस्मि—हूँ; अनुगृहीत:—अत्यन्त आभारी; अस्मि—हूँ; तव—तुम; भागवतस्य—शुद्ध भक्त का; वै—निस्सन्देह; दर्शन—तुम्हें देखकर; स्पर्शन—तथा तुम्हारे पाँवों का स्पर्श करके; आलापै:—तुमसे बातें करके; आतिथ्येन—तुम्हारे आतिथ्य से; आत्म-मेधसा—अपनी बुद्धि से।

दुर्वासा मुनि ने कहा : हे राजा, मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। पहले मैंने आपको एक सामान्य व्यक्ति समझकर आपका आतिथ्य स्वीकार किया था, किन्तु बाद में अपनी बुद्धि से मैं समझ सका कि आप भगवान् के अत्यन्त महान् भक्त हैं। इसलिए मात्र आपके दर्शन और आपके चरणस्पर्श से तथा आपसे बातें करके मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ और आपका अत्यन्त कृतज्ञ हो गया हूँ।

तात्पर्य : कहा गया है—*वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय*—शुद्ध वैष्णव के कार्यकलापों को बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी नहीं समझ सकता। अतएव महान् योगी दुर्वासा ने पहले महाराज अम्बरीष

को एक सामान्य व्यक्ति समझ कर उन्हें दण्ड देना चाहा। वैष्णव को समझने में ऐसी भूल हो जाती है। किन्तु जब दुर्वासा मुनि को सुदर्शन चक्र द्वारा सजा मिल चुकी तो उनकी बुद्धि जागी। इसीलिए *आत्ममेधसा* शब्द प्रयुक्त हुआ है जो सूचित करता है कि वे अपने निजी अनुभव से समझ सके कि राजा कितना महान् वैष्णव था। जब सुदर्शनचक्र ने दुर्वासा मुनि का पीछा करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने ब्रह्माजी तथा शिवजी की शरण लेनी चाही और वे वैकुण्ठ धाम तक भी पहुँच गए जहाँ उन्होंने साक्षात् भगवान् से भी बातें कीं, किन्तु सुदर्शन चक्र के आक्रमण से उन्हें कोई बचा न सका। अतएव वे अपने निजी अनुभव से वैष्णव के प्रभाव को समझ सके। दुर्वासा मुनि निस्सन्देह महान् योगी तथा अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण थे, किन्तु इतने बड़े योगी होते हुए भी वे वैष्णव के प्रभाव को नहीं समझ पाये थे। इसीलिए कहा जाता है—*वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय।* जब भी तथाकथित ज्ञानी तथा योगी वैष्णव के चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उसमें त्रुटि रहने की सम्भावना बनी रहती है। वैष्णव को इसीसे समझा जा सकता है कि अचिन्त्य कार्य करने में भगवान् की उस पर कितनी दया प्राप्त है।

कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ।
कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कर्म—कार्य; अवदातम्—कल्मषरहित; एतत्—यह सारा; ते—तुम्हारा; गायन्ति—गायेंगे; स्वः-स्त्रियः—स्वर्ग की स्त्रियाँ; मुहुः—सदा; कीर्तिम्—कीर्ति, यश; परम-पुण्याम्—अत्यन्त पवित्र तथा महिमामय; च—भी; कीर्तयिष्यति—निरन्तर गान करेगा; भूः—सारा संसार; इयम्—यह।

स्वर्गलोक की सारी भाग्यशाली स्त्रियाँ प्रतिक्षण आपके निर्मल चरित्र का गान करेंगी और इस संसार के लोग भी आपकी महिमा का निरन्तर उच्चारण करेंगे।

श्रीशुक उवाच
एवं सङ्कीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ।
ययौ विहायसामन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सङ्कीर्त्य—महिमागान करके; राजानम्—राजा को; दुर्वासाः—महान् योगी दुर्वासा मुनि; परितोषितः—सभी प्रकार से संतुष्ट होकर; ययौ—वहाँ से चला गया; विहायसा—अन्तरिक्ष मार्ग से; आमन्त्र्य—अनुमति लेकर; ब्रह्मलोकम्—इस ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक को; अहैतुकम्—शुष्क चिन्तन से विहीन।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार सब तरह से सन्तुष्ट होकर महान् योगी दुर्वासा ने

अनुमति ली और वे राजा का निरन्तर यशोगान करते हुए वहाँ से चले गये। वे आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक गये जो शुष्क ज्ञानियों से रहित है।

तात्पर्य : यद्यपि दुर्वासा मुनि आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक गये, किन्तु उन्हें किसी विमान की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि महान् योगीजन बिना किसी यंत्र के एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा कर सकते हैं। सिद्धलोक के निवासी किसी भी लोक की यात्रा कर सकते हैं क्योंकि उन्हें योग की सारी सिद्धियाँ सहज प्राप्त हैं। इस तरह महान् योगी दुर्वासा मुनि आकाश मार्ग से किसी लोक को, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक को भी, जा सकते थे। ब्रह्मलोक में हर व्यक्ति स्वरूपसिद्ध है और परम सत्य को प्राप्त करने के लिए उसे किसी दार्शनिक चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती। ब्रह्मलोक जाने का उद्देश्य वहाँ के निवासियों को यह बताना था कि भक्त कितना शक्तिशाली होता है और इस भौतिक जगत के हर जीव से आगे निकल सकता है। तथाकथित ज्ञानी तथा योगी किसी भक्त की तुलना नहीं कर सकते।

संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ।
मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाब्भक्षो बभूव ह ॥ २३॥

शब्दार्थ

संवत्सरः—पूरा एक वर्ष; अत्यगात्—बीत गया; तावत्—तब तक; यावता—जब तक; न—नहीं; आगतः—वापस आया; गतः—गया हुआ, दुर्वासा मुनि; मुनिः—मुनि; तत्-दर्शन-आकाङ्क्षः—उसे फिर से देखने की इच्छा करते हुए; राजा—राजा; अप्-भक्षः—केवल जल ग्रहण करके; बभूव—रहा; ह—निस्सन्देह।

दुर्वासा मुनि महाराज अम्बरीष के स्थान से चले गये थे और जब तक वे वापस नहीं लौटे—पूरे एक वर्ष तक—तब तक राजा केवल जल पीकर उपवास करते रहे।

गतेऽथ दुर्वाससि सोऽम्बरीषो
द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च वीक्ष्य
मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

गते—वापस आने पर; अथ—तब; दुर्वाससि—महान् योगी दुर्वासा के; सः—वह राजा; अम्बरीषः—महाराज अम्बरीष; द्विज-उपयोग—शुद्ध ब्राह्मण के लिए सर्वोपयुक्त; अति-पवित्रम्—अत्यन्त शुद्ध भोजन; आहरत्—खाया और खाने को दिया; ऋषेः—ऋषि का; विमोक्षम्—मुक्ति, छूटना; व्यसनम्—सुदर्शन चक्र द्वारा भस्म किये जाने के महान् संकट से; च—तथा; वीक्ष्य—देखकर; मेने—विचार किया; स्व-वीर्यम्—अपने पौरुष के विषय में; च—भी; पर-अनुभावम्—भगवान् की शुद्ध भक्ति के कारण।

एक वर्ष बाद जब दुर्वासा मुनि लौटे तो राजा अम्बरीष ने उन्हें सभी प्रकार के व्यंजन भरपेट

खिलाये और तब स्वयं भी भोजन किया। जब राजा ने देखा कि दुर्वासा दग्ध होने के महान् संकट से मुक्त हो चुके हैं तो वे यह समझ सके कि भगवान् की कृपा से वे स्वयं भी शक्तिमान हैं, किन्तु उन्होंने इसका श्रेय अपने को नहीं दिया क्योंकि यह सब भगवान् ने किया था।

तात्पर्य : महाराज अम्बरीष जैसा भक्त नाना प्रकार के कार्यों में सदा व्यस्त रहता है। निस्सन्देह, यह संसार सभी प्रकार के संकटों से भरा पड़ा है जिन से मनुष्य का सामना होता रहता है, किन्तु भगवान् पर पूर्णत: आश्रित रहने के कारण भक्त तनिक भी विचलित नहीं होता। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण महाराज अम्बरीष हैं। वे सारे जगत के सम्राट थे और उन्हें अनेक कार्य सम्पन्न करने होते थे और इन कार्यों के बीच में दुर्वासा मुनि जैसे व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यवधान उपस्थित करते रहते थे लेकिन राजा इन सबको धैर्यपूर्वक सहता जाता था क्योंकि वह भगवान् की कृपा पर पूर्णत: निर्भर रहता था। किन्तु भगवान् सबके हृदयों में स्थित हैं (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ट:*) और वे अपनी इच्छानुसार कार्य चलाते हैं। अत: यद्यपि महाराज अम्बरीष को अनेक उपद्रवों का सामना करना पड़ा, किन्तु भगवान् उन पर दयालु थे; अतएव सारी बातें इस तरह से नियोजित हो सकीं कि अन्त में दुर्वासा मुनि तथा महाराज अम्बरीष महान् मित्र बन गये और उन्होंने भक्तियोग के आधार पर मैत्रीभाव से एक दूसरे से विदा ली। अन्तत: दुर्वासा मुनि को भक्तियोग की शक्ति पर विश्वास हो गया यद्यपि वे स्वयं महान् योगी थे। अतएव जैसा कि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (६.४७) में कहा है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत:॥

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मुझमें सदैव विश्वास करता है और दिव्य प्रेमाभक्ति से मेरी पूजा करता है वह योग द्वारा मुझसे भली भाँति संयुक्त हो जाता है और सबसे महान् होता है।'' इस तरह यह तथ्य है कि भक्त महानतम योगी होता है जैसा कि महाराज अम्बरीष द्वारा दुर्वासा मुनि के साथ किये गये व्यवहार से सिद्ध होता है।

एवं विधानेकगुण: स राजा
परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ।

क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं
ययाविरिञ्च्यान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; विधा-अनेक-गुणः—अनेकानेक गुणों से युक्त; सः—वह महाराज अम्बरीष; राजा—राजा; पर-आत्मनि—परमात्मा में; ब्रह्मणि—ब्रह्म में; वासुदेवे—वासुदेव कृष्ण में; क्रिया-कलापैः—कार्यों से; समुवाह—सम्पन्न किया; भक्तिम्—भक्ति; यया—ऐसे कार्यों से; आविरिञ्च्यान्—सर्वोच्चलोक से लेकर; निरयान्—नरकलोकों तक; चकार—सर्वत्र संकट का अनुभव किया।

इस प्रकार अपनी भक्ति के कारण नाना प्रकार के दिव्य गुणों से युक्त महाराज अम्बरीष ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् से भलीभाँति अवगत हो गये और सम्यक् रीति से भक्ति करने लगे। अपनी भक्ति के कारण उन्हें इस भौतिक जगत का सर्वोच्चलोक भी नरक तुल्य लगने लगा।

तात्पर्य : महाराज अम्बरीष जैसा महान् एवं शुद्ध भक्त ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् से भलीभाँति परिचित रहता है। दूसरे शब्दों में, वासुदेव कृष्ण का भक्त परम सत्य के अन्य स्वरूपों से अवगत रहता है। परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में की जाती है—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*)। भगवान् वासुदेव का भक्त सब जानता है (*वासुदेवः सर्वमिति*) क्योंकि वासुदेव कृष्ण में परमात्मा तथा ब्रह्म दोनों निहित रहते हैं। मनुष्य को योग क्रिया द्वारा परमात्मा की अनुभूति नहीं करनी होती क्योंकि सदैव वासुदेव का ध्यान करने वाला भक्त सर्वोच्च योगी हैं (*योगिनामपि सर्वेषां*)। जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है, यदि कोई वासुदेव का पूर्ण भक्त है तो वह सबसे बड़ा महात्मा होता है (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। महात्मा वह है जिसे परम सत्य का पूरा ज्ञान हो। इस प्रकार महाराज अम्बरीष भगवान् का भक्त होने के कारण परमात्मा, ब्रह्म, माया, भौतिक जगत, आध्यात्मिक जगत तथा सर्वत्र घटित होने वाली घटनाओं से पूरी तरह अवगत थे। *यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति।* वासुदेव को जानने के कारण उनका भक्त वासुदेव की सृष्टि के भीतर हर वस्तु को जानता है (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। ऐसा भक्त इस भौतिक जगत के भीतर सुख के सर्वोच्च स्तर को कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता।

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

(भागवत ६.१७.२८)

भक्ति में स्थिर रहने के कारण भक्त इस जगत के किसी भी पद को महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। इसीलिए श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है (*चैतन्य चन्द्रामृत* ५)—

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाश पुष्पायते

दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः॥

ऐसा व्यक्ति जो श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे महान् पुरुष की भक्ति के द्वारा शुद्ध भक्त बनता है, उसके लिए *कैवल्य* अर्थात् ब्रह्म में तल्लीन हो जाना नरक तुल्य है। भक्त के लिए स्वर्गलोक आकाश-पुष्प के समान है और सिद्धि की तो भक्त तनिक भी परवाह नहीं करता क्योंकि भक्त को योगसिद्धि का उद्देश्य स्वतः प्राप्त हो जाता है। ऐसा तभी सम्भव है जब मनुष्य श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदेशों के माध्यम से भगवद्भक्त बन जाता है।

श्रीशुक उवाच
अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः ।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—इस प्रकार; अम्बरीषः—राजा अम्बरीष; तनयेषु—अपने पुत्रों को; राज्यम्—राज्य; समान-शीलेषु—अपने पिता की ही भाँति योग्य; विसृज्य—बाँट करके; धीरः—अत्यन्त विद्वान पुरुष, महाराज अम्बरीष; वनम्—वन में; विवेश—प्रविष्ट हुए; आत्मनि—भगवान्; वासुदेवे—वासुदेव नाम से प्रसिद्ध कृष्ण में; मनः—मन को; दधत्—केन्द्रीभूत करते हुए; ध्वस्त—नष्ट; गुण-प्रवाहः—प्रकृति के गुणों की लहरें।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् भक्तिमय जीवन की उन्नत दशा के कारण अम्बरीष भौतिक वस्तुओं की किसी तरह से इच्छा न रखते हुए सक्रिय गृहस्थ जीवन से उपरत हो गये। उन्होंने अपनी सम्पत्ति अपने ही समान योग्य पुत्रों में बाँट दी और स्वयं वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके भगवान् वासुदेव में अपना मन पूर्णतः एकाग्र करने के लिए जंगल चले गये।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त होने के नाते महाराज अम्बरीष जीवन की किसी भी स्थिति में मुक्त थे। जैसा कि श्रील रूपगोस्वामी ने बतलाया है कि भक्त सदैव मुक्त होता है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

भक्तिरसामृत सिन्धु में श्रील रूप गोस्वामी इस तरह उपदेश देते हैं कि यदि किसी की एकमात्र इच्छा भगवान् की सेवा करने की है तो वह जीवन की किसी भी दशा में मुक्त होता है। निस्सन्देह, महाराज अम्बरीष किसी भी दशा में मुक्त थे, किन्तु आदर्श राजा के रूप में उन्होंने गृहस्थ जीवन से वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है कि पारिवारिक जिम्मेदारियाँ त्याग करके वासुदेव के चरणकमलों में एकाग्र हो। इसीलिए महाराज अम्बरीष ने अपना राज्य अपने पुत्रों में बाँट दिया और फिर वे गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गये।

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपते ।
सङ्कीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; एतत्—यह; पुण्यम् आख्यानम्—इतिहास का सर्वाधिक पुण्यकर्म; अम्बरीषस्य—महाराज अम्बरीष का; भूपते—हे राजा (परीक्षित); सङ्कीर्तयन्—दुहराने या कीर्तन करने से; अनुध्यायन्—ध्यान धरने से; भक्तः—भक्त; भगवतः—भगवान् का; भवेत्—बन सकता है।

जो भी इस कथा को बार-बार पढ़ता है या महाराज अम्बरीष के कार्यकलापों से सम्बन्धित इस कथा का चिन्तन करता है वह अवश्य ही भगवान् का शुद्ध भक्त बन जाता है।

तात्पर्य : यहाँ पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक उत्तम उदाहरण दिया है। जब कोई मनुष्य धन के लिए उत्सुक रहता है तो वह लखपति या करोड़पति बन जाने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता प्रत्युत येन-केन-प्रकारेण अधिकाधिक धन कमाना चाहता है। ऐसी ही मनोवृत्ति भक्त में भी पाई जाती है। भक्त यह सोचकर कभी सन्तुष्ट नहीं होता कि ''मेरी भक्ति की यह सीमा है।'' वह भगवान् की जितनी अधिक सेवा करता है, उतनी ही अधिक सेवा करने की उसकी इच्छा जगती है। यह एक भक्त की दशा है। महाराज अम्बरीष अपने गृहस्थ जीवन में सभी प्रकार से शुद्ध भक्त थे क्योंकि उनका मन तथा उनकी सारी इन्द्रियाँ भक्ति में लगी रहती थीं (*स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोः वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने*)। महाराज अम्बरीष आत्म-तुष्ट थे क्योंकि उनकी सारी इन्द्रियाँ भक्ति में लगी थीं (*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते*)। महाराज अम्बरीष ने अपनी सारी इन्द्रियों को भक्ति में लगाये रखते हुए भी अपना घर त्याग दिया और अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर एकाग्र करने के उद्देश्य से वे जंगल चले गये, ठीक वैसे ही जैसे एक व्यापारी धनधान्य से सम्पन्न होते हुए भी और अधिक धन कमाना चाहता

है। भक्ति में अधिकाधिक लगे रहने की यह प्रवृत्ति मनुष्य को महान् पद पर लाती है। कर्म स्तर पर जो व्यापारी अधिकाधिक धन चाहता है वह अधिकाधिक बन्धन में फँसता जाता है जबकि भक्त अधिकाधिक मुक्त होता जाता है।

अम्बरीषस्य चरितं ये शृण्वन्ति महात्मनः ।
मुक्तिं प्रयान्ति ते सर्वे भक्त्या विष्णोः प्रसादतः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अम्बरीषस्य—महाराज अम्बरीष का; चरितम्—चरित्र; ये—जो लोग; शृण्वन्ति—सुनते हैं; महा-आत्मनः—महात्मा या भक्त का; मुक्तिम्—मुक्ति; प्रयान्ति—अवश्य पाते हैं; ते—ऐसे लोग; सर्वे—सभी; भक्त्या—भक्ति से; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; प्रसादतः—कृपा से।

भगवत्कृपा से जो लोग महान् भक्त महाराज अम्बरीष के कार्यकलापों के विषय में सुनते हैं, वे अवश्य ही मुक्त हो जाते हैं या तुरन्त भक्त बन जाते हैं।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''दुर्वासा मुनि को जीवन-दान'' नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।